अध्याय--३

-०-

भक्ति एवं योग

(क) दोनों की सापेक्ष स्थिति

(ख) नाथ सम्प्रदाय की परम्परा

(ग) गोरख की भक्ति एवं योग

(घ) जनता की प्रवृत्ति

अध्याय --३

-०-

भक्ति एवं योग

किसी लक्ष्य-विशेष की सिद्धि के लिए दृढ़ भाव से जो अविच्छिन्न क्रिया की जाती है, उसे साधना कहते हैं, चाहे वह भौतिक-सुख के लिये हो अथवा पारलौकिक आनन्द के लिए हो । भक्ति एवं योग-- दो प्रकार की साधनाएं हैं जो आत्मा का आध्यात्मिक पथ प्रशस्त करती है ।'जैसे समस्त नदी-नालों का जल समुद्र में हो जाता है वैसे ही टेढ़े-मेढ़े सभी साधन-मार्गों से यात्रा करने वाले मनुष्यों के गन्तव्य-स्थान एकमात्र परमात्मा ही हैं[१]।' गहरे पानी में पैठकर आत्मानुभूति के मौलिक अन्वेषण में प्रवृत्त होना ही हमारा प्रमुख कर्तव्य है । स्वामी शुद्धानन्द जी के शब्दों में' हमारे सभी अंग, हमारे अस्तित्व का एक-एक कण भगवत्प्राप्ति की सजग अभीप्सा में पुलकित हो उठे, हमारे भीतर दिव्य पवित्रता भर जाय इसके लिए हमारे अन्दर दृढ़ निश्चय होना चाहिए -- अटल निष्ठा चाहिए और चाहिए साधना के प्रति अटूट अनुराग । 'अन्तर्मुख होओ','भीतर की ओर लौटो' समस्त साधनाओं का एकमात्र यही सूत्र है[२]।'

भक्ति की उत्पत्ति 'भज सेवायाम्' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय लगाकर हुई है ।'भज्' धातु सेवा, सम्मान,पूजा और आराधना के अर्थ में ही प्रयुक्त होती है । भक्ति का विस्तृत विवरण मैंने प्रथम अध्याय में किया है ।

१- कल्याण -- साधनांक के मुखपृष्ठ से अवतरित ।

२- स्वामी शुद्धानन्द जी भारती-- कल्याण,साधनांक,साधन और सिद्धि,पृ०६०२६२

योग

'योग' शब्द 'युज् समाधौ' धातु से उद्भूत हुआ है ,जिसका अर्थ है 'मिलना,''जुड़ना' । तात्पर्य यह कि योग वह क्रिया है,जिससे जीवात्मा, परमात्मा से मिलता है । जीव और ईश्वर सजातीय हैं । जीव ईश्वर का अंश है । अज्ञानवशात् अंश-अंशी का भाव उत्पन्न हो गया है । योग के द्वारा यह अविद्या नष्ट हो जाती है और जीव को ईश्वर से अपने अभेद का ज्ञान हो जाता है तथा वह अपने शुद्ध रूप में स्थित हो जाता है । डा० रामकुमार वर्मा का कथन है -- 'आत्मा जिस शारीरिक या मानसिक साधना से परमात्मा से जुड़ जाय वही योग है ।'[१] श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भागवत गीता में 'समत्वं योग उच्यते' कहा है --तात्पर्य यह कि दो परस्पर विरोधी द्वन्द्वों से ऊपर उठकर समत्व बुद्धि प्राप्त करना 'योग' कहलाता है । 'योग: कर्मसु कौशलम्' -- अर्थात् कर्मों के बन्धन को विच्छिन्न करने के लिए उनके प्रति पूर्ण तटस्थ भाव धारण कर मुक्तावस्था को प्राप्त करने के उपाय को भी 'योग' कहा गया है ।'योगेनान्ते तनुत्यजाम्' -- तात्पर्य यह कि देहात्म बुद्धि त्याग कर आत्मभावापन्न या विदेह होना योग है ।

योग के विषय में महर्षि पतंजलि ने अपने 'पातंजल योग-सूत्र' में योग की परिभाषा निम्नरूप में दी है --'योगश्चित्तवृत्तिनिरोध:'[२] अर्थात् चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं । किन्तु महर्षि अरविन्द ने योग के विषय में अपना लक्ष्य इन योग मार्गों से इतर,निम्न रूप में व्यक्त किया है -- 'योग के जिस मार्ग का यहां अवलम्बन किया जाता है उसका उद्देश्य अन्य योग मार्गों से भिन्न है । इस योग मार्ग का लक्ष्य केवल सामान्य अज्ञ जगच्चेतना से ऊपर उठकर परमात्म भाव को प्राप्त होना ही नहीं है, प्रत्युत उस परमात्म भाव की विज्ञान शक्ति को इस मन,बुद्धि,प्राण और शरीर के जड़त्व में ले आना, इसको दिव्य बना

१-डा० रामकुमार वर्मा --'कबीर का रहस्यवाद',पृ०६८

२-पातंजल योग दर्शन (१,२)

देना, इनमें भगवान् को प्रकट करना और जड पार्थिव प्रकृति में दिव्य जीवन निर्माण करना इसका लक्ष्य है।[१]

पतंजलि के 'योग दर्शन' में वैदिक काल से आती हुई योग साधना की परम्परा को एक स्वतन्त्र दर्शन का गौरवान्वित स्थान प्राप्त हुआ[२]। पातंजल दर्शन चार पादों में विभक्त है। ये पाद -- समाधि, साधना, विभूति तथा कैवल्य हैं। 'समाधि पाद' में योग के स्वरूप, उद्देश्य और लक्षण, चित्तवृत्तिनिरोध के उपाय तथा विभिन्न प्रकार के योगों की विवेचना की गई है। 'साधना पाद' में क्रिया योग, क्लेश, कर्मफल, दुःख आदि का विवेचन है। 'विभूतिपाद' में योग की अन्तरंग अवस्थाओं तथा योगाभ्यास का वर्णन है। तथा 'कैवल्य पाद' में मुक्ति के स्वरूप की विवेचना की गई है।

योग के आठ अंग माने गये हैं -- यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि।

यम

बाह्य एवं आभ्यन्तर इन्द्रियों का संयम ही यम है। पतंजलि ने ५ यम गिनाए हैं-- अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना), अपरिग्रह (धन संचय न करना) और ब्रह्मचर्य। उनका यह आदेश है कि 'जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमाः महाव्रतम्'[२] अर्थात् यह यम, जाति देशकाल और समय से अनवच्छिन्न सार्वभौम महाव्रत है।

नियम

यम का अर्थ अचल धर्म है किन्तु नियम का अर्थ चल धर्म है। पतंजलि ने इनकी संख्या ५ बतायी है-- शौच (स्वच्छता), संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान[३]।

१- श्री अरविन्द, अनु० श्री लक्ष्मीनारायण गर्दे-- योग प्रदीप (सन् १९६३), पृ०३-४

२- धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी -- सन्त मत का सरभंग सम्प्रदाय, पृ०६७

३- पातंजल योगदर्शन (२,३१)

४- ईश्वर प्रणिधान से तात्पर्य उस परम गुरु को सब कर्मों को अर्पण कर देना।

आसन

योग के अभ्यास में आसन का बहुत अधिक महत्त्व है । पतंजलि ने देर तक सुखपूर्वक बैठने को आसन कहा है--'स्थिरसुखमासनम्'[१] । प्रमुखत: आसन निम्न हैं-- पद्मासन, सिद्धासन, स्वस्तिकासन, और अर्द्ध पद्मासन । आसन- सिद्ध को प्राणायाम का प्रमुख आधार माना गया है ।

प्राणायाम

श्वास-प्रश्वास के गतिविच्छेद का नाम प्राणायाम है । प्राण वायु का शरीर में प्रविष्ट होना श्वास है और बाहर निकलना प्रश्वास है । प्राणायाम के तीन अंग -- पूरक, रेचक तथा कुंभक हैं । पूरक अर्थात् सांस को भीतर खींचना, रेचक- सांस को बाहर निकालना, कुंभक से तात्पर्य सांस को रोकना है । विद्वानों ने प्राय: बाह्य को रेचक, आभ्यंतर को पूरक तथा स्तम्भ वृत्ति को कुम्भक की संज्ञा दी है[२] ।

प्रत्याहार

पतंजलि ने इसे निम्न रूप में परिभाषित किया है -- 'स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणाम् प्रत्याहार:'[३] । अर्थात् अपने विषय से सम्पर्क न होने से इन्द्रियों के चित्तस्वरूप का अनुसरण सा करना प्रत्याहार कहलाता है । साधक को कच्छप-वृत्ति धारण कर समस्त इन्द्रियों तथा उनके विषयों से मन को हटाकर आत्म-स्वरूप में लीन करना चाहिए ।

कार्य-सिद्धि से बाह्य सम्बन्ध होने के कारण ये पांच योग के बहिरंग साधन कहे जाते हैं तथा अन्तिम तीन-- धारणा, ध्यान, समाधि अंतरंग

१- पातंजल योग दर्शन (२।४६)

२- भारतीय दर्शन, पृ०३६१ -- पं० बलदेव उपाध्याय

३- पातंजल योग दर्शन (२,५४)

साधन के नाम से ज्ञात हैं,जिन्हें समष्टि रूप में 'संयम' की संज्ञा दी जाती है[१]।

धारणा

चित्त को किसी देश विशेष में बांधना धारणा है । 'देशबन्धश्चित्तस्य धारणा' ।अर्थात् किसी एक स्थान जैसे-- नाभि चक्र, हृदय कमल, नासिकाग्र,जिह्वाग्र में अथवा वाह्य वस्तु जैसे सूर्य चन्द्रादि किसी इष्टमूर्ति में चित्त की वृत्ति को केन्द्रित करने का नाम 'धारणा' है ।

ध्यान

'तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्' -- जब धारणा के द्वारा प्रत्ययों की एकतानता हो जाती है अर्थात् वृत्तियों का प्रवाह एक रस हो जाता है उसे ध्यान कहते हैं ।

समाधि

अनवरत अभ्यास के कारण जब ध्यान,ध्येयाकार में परिणत हो जाता है उसे समाधि कहते हैं ।

योग एक है,अनेक नहीं । वैदिक वाङ्मय तथा बौद्ध साहित्य में बिना किसी विशेषण के अकेले 'योग' शब्द का व्यवहार हुआ है । इसी परम्परा को पतंजलि ने भी स्वीकार किया है,किन्तु आजकल कुछ विशेषणों से संयुक्त कर न्यूनाधिक स्वतंत्र योग शैलियों की कल्पना की जाती है । यथा-- राजयोग,हठ योग,कर्मयोग, भक्ति योग,ज्ञान योग । (कर्म योग चित्त प्रसाद के अन्तर्गत आ जाता है) ,भक्तियोग का अन्तर्भाव ईश्वर प्रणिधान में होता है । ज्ञान योग स्वाध्याय और सत्संग में अन्तर्भुक्त है । आसन और प्रणायाम ही हठ योग है । राजयोग-- धारणा,ध्यान और समाधि से भिन्न है--तात्पर्य यह कि यह सब योग की स्वतंत्र शैलियां नहीं हैं । आध्यात्मिक उन्नति की विभिन्न सीढ़ियां हैं और सब एक दूसरे से सम्बद्ध हैं ।

१- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी-- नाथ सम्प्रदाय,पृ०१२०

(क) दोनों की सापेक्ष स्थिति

मध्ययुग के पूर्व पक्ष में जिस समय मुस्लिम आतंक बढ़ा हुआ था, भक्ति एवं योग, दोनों का प्रभाव साथ-साथ चल रहा था। सन्त संप्रदाय को यह योग नाथ सम्प्रदाय से प्राप्त हुआ। सन्त सम्प्रदाय का सीधा सम्बन्ध नाथ सम्प्रदाय से है। सन्त सम्प्रदाय ने सिद्ध सम्प्रदाय से आई हुई नाथ सम्प्रदाय की विचारधारा मूल रूप में ग्रहण की। भक्ति आन्दोलन के महासागर में भी योग का दीप संतों का विश्राम-स्थल बना रहा। नाथ सम्प्रदाय की आचार-निष्ठा, विवेक सम्पन्नता, अन्धविश्वासों को तोड़ने की उग्रता, एवं परम्परागत कर्मकाण्डों की निरर्थकता सन्त सम्प्रदाय में सीधी चली आई[१]।

कबीर ने नाथ सम्प्रदाय से स्फूर्ति ग्रहण कर सन्त सम्प्रदाय की विचारधारा का निर्धारण किया। इसके अतिरिक्त अपनी साधना को एक स्वतन्त्र रूप दिया। कबीर की साधना 'सुचिन्तित योग-साधना' थी। कबीर ने सुचिन्तित 'अवधू योगी' को जग से न्यारा कहा है जो 'निरति' की मुद्रा और 'सुरति' की शृंगी धारण कर नाद की धारा को कभी भी खण्डित नहीं करता। चेतना की चौकी पर आसन लगाकर वह संसार की ओर देखता तक नहीं तथा निरन्तर आकाश का वासी बन आसनस्थ होकर महारस का पान करता है और कंथा में रहता हुआ दिल के दर्पण में देखता है। ब्रह्माग्नि में काया को भस्मसात् कर त्रिकुटी के संगम में जागता रहता है और ऐसा ही योगीश्वर की 'लौ' सहज शून्य से लगी रहती है[२]। कबीर सन्तों ने अन्य सभी रसों को सारहीन बतलाते हुए राम रसायन को सच्चा रस कहा है।

'कहि कबीर सगले मद छूछे इहै महा रसु साचो रे[३]।'

१-डा० रामकुमार वर्मा -- सन्त काव्य(निबन्ध), हिन्दी साहित्य भाग२, पृ०२०४

२-कबीर ग्रन्थावली, पद ६६

३- सन्त०कब डा० रामकुमार वर्मा -- संत कबीर, रागु रामकली १.

ईश्वर और गौरी ने इस रस का पान किया था--

'यहु रस तो सब फीका भया, ब्रह्म अगनि परजारी रे ।
ईश्वर गौरी पीवन लागे, राम तनीं मतवारी रे ।'

श्री गुरुग्रन्थ साहिब में एक स्थान पर कहा गया है कि 'हे मेरे मन ! किसी प्रकार का भ्रम न कर और मनमाने अमृतरस का पान कर । वह अमृत धारा गगन में दसवें द्वार (ब्रह्म रन्ध्र) पर लहरा रही है । अहर्निश जागते हुए जीवन्मुक्त होकर और पाँचों चोरों को शब्द-बाण से मार कर 'अलिपत गुफा' में निर्लिप्त भाव से लौ लगाए रह ,सांसारिक आसक्तियों में न भटक कर निरन्तर 'सहज' में समाया रह । जो अवधूत सद्गुरु की सीख ग्रहण कर निरन्तर जागता रहता है उसी का तत्व से साक्षात्कार होता है । संसार तो अज्ञान में लिप्त आवागमन के बन्धन में पड़ा रहता है । दिन रात अनहद का संगीत ध्वनित हो रहा है,जिसे गुरु की कृपा से सुनकर उस 'अज्ञेय' को माना जा सकता है । 'सुन्न समाधि' में मन को स्वाभाविक रूप से अनुरक्त करके तथा आसक्तियों का त्याग करके द्वैत भावना को मिटाया जाता है ।'[1]

गुरु नानक देव ने कहा है कि कन्था पहनने, दण्ड धारण करने, भस्म रमाने एवं कानों को फड़वाकर कुण्डल पहनने तथा शृंगी बजाने में योग की साधना सिद्ध नहीं होती । वस्तुत: योग तो आसक्तियों के बीच निर्लिप्त भाव से रहकर भगवान में लीन होने में है । ... योगी तो वही है जो जीवन्मुक्त होकर वासनाओं से एकदम ऊपर उठ जाता है ।[2]

दादू दयाल निरंजन योगी के विषय में कहते हैं कि वह सर्वत्र एकाकी रमण करता है और फोली, डंडा, अधारी, गढ़ी, शृंगी, मुद्रा, विभूति, कंथा जप और आसनादि के बन्धनों में नहीं बंधता । इनकी योग साधना का पर्यवसान प्रेम प्रवाह में होता है --

---

१- श्री गुरु ग्रन्थ साहिब-- रामकली,महला १,पृ०६०४

२- श्री गुरु ग्रन्थ -- सूही,महला १,पृ०७३०

'परम तेज परगट भया, तंह मन रह्या समाइ ।
दादू खेलै पीव सौं, नहिं आवै नहिं जाइ ।।
नैनहु आगे देखिये, आतम अंतर सोइ ।
तेज पुंज सब भरि रह्या, झिलमिलि झिलमिलि होइ ।।
तेज पुंज की सुन्दरी, तेज पुंज का कंत ।
तेज पुंज की सेज परि, दादू बन्या बसंत ।।[१]

सन्त रैदास की बानियों में योग साधना का स्पष्टीकरण निम्न रूप में हुआ है --

सुन्न मण्डल में मेरा बासा, तातै जिव में रहौं उदासा ।
कह रैदास निरंजन ध्यावौं, जिस घर जांव सो बहुरि न आवौं ।।[२]

सन्त सुन्दरदास ने योग का भक्ति से समन्वय स्थापित कर योग की समस्त कष्टसाध्य नीरस एवं उलझनपूर्ण चर्या को सहज भाव से मानसिक साधना में परिवर्तित कर दिया है । वे तो भक्तिरूपी अमृत स्वाद चख लेने के अनन्तर योगादि की क्रिया करने को हलाहल पान करना समझते हैं--

'योगहु यज्ञ व्रतादि क्रिया तिनकौ नहिं तौ सुपनै अभिलाखै ।
सुन्दर अमृत पान कियौ तब तौ कहि कौन हलाहल चाखै ।।[३]'

इसके अतिरिक्त इन सन्तों ने हठयोग, कुंडलिनी जागरण, सुरति-निरति योग, तथा सहज योग को स्वीकार किया है ।

हठयोग

कबीर ने हठयोग की महत्ता स्वीकार की है । इस योग का लक्ष्य है-- 'महाकुण्डलिनी' नामक शक्ति को जाग्रत करना । कुण्डलिनी, मानव-

---

१- दादू दयाल की बानी -- भेष को अंग, प ४६-४७
२- रैदास की बानी -- ५६
३- संत सुधा सार-- स्वामी सुन्दरदास, पृ०५८२

शरीर में मेरुदण्ड के नीचे, सुषुम्णा नाड़ी के नीचे के विवर में सर्पाकार निवास करती है[१]। इसका शरीर सर्प के समान साढ़े तीन बार कुण्डलाकार में मुड़ा हुआ रहता है और यह अपनी पूंछ मुंह में दबाये हुए सुषुम्णा नाड़ी के निचले छिद्र के समीप स्थित है[२]। कबीर ने इसे 'जाय मोरे' (मेरी प्राण-शक्ति) कहा है।

हठ योग में काया शोधन के लिए षट्कर्मों-- धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, कपालभाति का विधान है किन्तु कबीर ने इन बाह्योपचार कर्मों को भ्रम मात्र कहा है। कुंडलिनी जागरण, इड़ा पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों द्वारा होता है। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ियों को गंगा, यमुना, सरस्वती कहा गया है। नाड़ियों के इस सम्मिलन स्थान को त्रिवेणी अथवा संगम कहा गया है। कबीर ने इन नाड़ियों की सहायता से षटचक्रों (मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञाचक्र) को बेधते हुए संगम स्थान पर मन को ले जाने का निर्देश किया है[३]। इस प्रकार योगी षट्चक्र का बेधन करता हुआ साधना में चरम लक्ष्य की प्राप्ति करता है।

सुरति-निरति

हठयोग की कठिन साधनाओं से ऊबकर कबीर ने सरल यौगिक क्रियाओं द्वारा मन को केन्द्रित करने के लिए लय योग की साधना प्रारम्भ की, जिसे सुरति योग कहा जाता है। इस सुरति योग की सिद्धि के लिए कबीर ने प्राणायाम के साथ-साथ ज्ञान का महत्व बतलाया है।

> मन करि बैल सुरति करि पैंडा, ज्ञान गौनि भरि डारी।
> कहत कबीर सुनहु रे संतहु, निबहो खेप हमारी ।।[४]

१- शिव संहिता, द्वि० पटल, मं०२३

२- ,, पं० पटल, मं० ५७

'मुखे विवेश्य सा पुच्छं सुषुम्णा विवरे स्थिता।'

३- क० ग्रं०, पृ०६४

४- कबीर ग्रन्थावली, पृ०२७७

कबीर ने कहा है --

'सुरति समानी निरति में, निरति भई निरधार ।
सुरति निरति परचा भया, तब खुले स्यंभु दुवार ।।'[1]

इस प्रकार जब सुरति का निरति से तादात्म्य हो जाता है तभी स्यंभुद्वार अर्थात् कल्याण के द्वार खुल जाते हैं ।[1]

सहज योग

यह वस्तुत: सन्तों की योग साधना की चरम सीमा है । इस साधना के लिए साधक को किसी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ता ।

'सहजै रहै समाय, न कहूं आवै न जाय ।'[2]

कबीर का सहज योग राम-नाम की साधना ही है । किन्तु --

'सहज सहज सब कौ कहै, सहज न चीन्है कोइ ।
जिन सहजै हरि जी मिलै, सहज कहीजै सोइ ।।'[3]

इस प्रकार कबीर योग के कष्टसाध्य आचारों को व्यर्थ बतलाते हुए कहते हैं कि सच्चा योगी वही है, जिसकी मुद्रा मन में रहती है और जो अहर्निश जागरण करता रहता है । मन ही उसका आसन, समाधि, जप, तप, खप्पर और सिंगी है तथा मन में ही वह अनहद-नाद सुना करता है ।

कबीर ने उसे ही परम योगी कहा है, जिसका मन राम-नाम में लीन होकर उसी के रस का पान करता है[4] । कबीर ने भक्ति रस का पान किया जिससे उसका नशा कभी उतरा ही नहीं[5] ।

१- डा० गोविन्द त्रिगुणायत- कबीर की विचारधारा, पृ०३१५-१६

२- कबीर ग्रन्थावली, पृ०१३०

३- ,, - सहज कौ अंग, २, ४

४-'कोई पीवै रे रस राम नाम का जो पीवै सो जोगी रे ।'
--कबीर ग्रन्थावली, पृ०११०

५-'कांस कबीर इहि रसि माता, कबहूं उछकि न जाई ।'- कबीर ग्रन्थावली, पृ०११६

कबीर की भक्ति भाव-भक्ति है । बिना भक्ति के मुक्ति नहीं मिल सकती ।

भाव भगति विस्वास बिन, कटै न संसै सूल ।
कहै कबीर हरि भगति बिन, मुक्ति नहीं रे मूल ।।[१]

तथा--

जब लग भाव भगति नहिं करिहौं, तब लग भवसागर बयूं तरिहौं[२] ।

कबीर ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि बिना योग-साधना के भक्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती,किन्तु योग मार्ग भक्ति के ही आश्रित है । बिना भक्ति के योग की कुछ सार्थकता नहीं है । राम नाम की भक्ति के बिना जप-तप,ज्ञान-ध्यान, सब झूठा है[३] । भाव-भक्ति को श्रेष्ठ बतलाते हुए उन्होंने यहां तक कह दिया है कि --

बया जप तप बया संजमा, बया तीरथ व्रत असनान ।
जब लगि जुक्ति न जानिये, भाव-भक्ति भगवान् ।।

कबीर ने प्रेम भक्ति स्वीकार की तथा दास्य-भाव,सख्य-भाव, वात्सल्य भाव,दाम्पत्य भाव एवं परम विरह भाव से राम की भक्ति की है । नानक,दादू,रैदास आदि ने भी इसी पथ का अनुसरण किया । अत: यह स्पष्ट देखा जा सकता है कि भक्ति के पूर्वपक्ष के संतों ने भक्ति को केवल मानसिक रूप में उतार कर सहज स्वाभाविक धर्म के अनुकरण का मार्ग प्रशस्त किया है ।

१- कबीर ग्रन्थावली - चौपदी रमैणी,पृ०२४५
२- ,, - ,, पृ० २४२
३- ,, - पदावली २५२

मध्य युग का उत्तर पक्ष

इस युग के आते-आते मुस्लिम आतंक लगभग समाप्त हो चुका था । शासकों का दृष्टिकोण धर्मान्धता में ही केन्द्रित न होकर उदारतापूर्ण कार्यों में भी व्यापक हुआ था । ऐसे समय में अकबर के सुदीर्घकालीन नियन्त्रित राज्य-व्यवस्था की अग्रिम भूमिका निर्मित हुई । अकबर की उदारता एवं सहिष्णुता से लाभ उठाकर हिन्दू जनता पुन: मूर्ति-पूजा की ओर झुकी,फलत: सगुण भक्ति का प्रचार बढ़ने लगा । इस युग में 'योग-साधना' लुप्त-सी हो गई,क्योंकि जनता योग के दुरूह मार्ग को त्याग कर भक्ति के सरल मार्ग को श्रेयष्कर समझने लगी । भक्ति के सगुण रूप को महत्व दिया गया, जिसमें राम और कृष्ण को इष्ट के रूप में स्वीकार किया गया । गोस्वामी तुलसीदास ने राम की उपासना की तथा सूरदास ने श्रीकृष्ण की । गोस्वामी तुलसीदास जी ने अपने इष्टदेव के प्रति कहा है कि --

'जेहि हमि गावहिं वेद बुध, जाहि धरहि मुनि ध्यान ।
सोइ दशरथ सुत भगत हित, कौसलपति भगवान् ।।'[१]

यद्यपि तुलसीदास यह मानते हैं कि उनके राम,परब्रह्म हैंतथापि भक्तों के उद्धार के लिए तथा धर्म के उत्थान के लिए वे इस भूमण्डल पर मानव अवतार लेकर नर-चरित्र किया करते हैं । उन्होंने सगुण और निर्गुण रूप में कोई भेद नहीं माना --

अगुन अरूप अलख अज जोई । भगत प्रेम बस सगुन सो होई ।
जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल विलग नहिं जैसे।।[२]

१-, रामचरित मानस--बालकाण्ड, ११८
२- ,, -- ,, दोहा ११६

जिस प्रकार जल और हिमखण्ड अलग-अलग नहीं हैं, दोनों में जल ही वर्तमान है, उसी प्रकार सगुण और निर्गुण में कोई भेद नहीं है । गोस्वामी जी का यह समन्वयवादी दृष्टिकोण भक्ति-साधना की सबसे बड़ी विशेषता है ।

इसी प्रकार महाकवि सूरदास जी ने श्रीकृष्ण जी को उपास्य देव के रूप में स्वीकार कर उनकी लीलाओं का गान किया है, जिससे उनकी भक्ति का उच्चस्तरीय प्रचार-प्रसार सम्भव हो सका ।

श्रीकृष्ण के अंगुष्ठ चूसने पर उनके ब्रह्मरूप को सूरदास ने बड़ी मार्मिकता से स्पष्ट किया है :-

कर पग गहि, अंगुठा मुख मेलत ।
प्रभु पौढ़े पालनैं अकेले, हरषि-हरषि अपनैं रंग खेलत ।
सिव सोचत, विधि बुद्धि विचारत, बट बाढ़यो सागर-जल फेलत ।
बिडरि चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग-दंतीनि सकेलत ।
मुनि मन मोत भए, भुव कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत ।
उन ब्रज-बासिनि बात न जानी, समुझै सूर सकट पग ठेलत ।।[१]

अत: जब भक्ति के पूर्व और उत्तर पक्ष का सापेक्ष स्थिति की हम तुलना करते हैं तो निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त होते हैं ।

पूर्व पक्ष	उत्तर पक्ष
१- इष्ट का रूप निराकार है।	१- इष्ट का रूप साकार है ।
२- प्रतीकों के प्रयोग से ब्रह्म को रूपकों में बांधा गया है ।	२- प्रत्यक्ष लीला गान किया गया है ।
३- ब्रह्म सीमाओं से परे है । अवतार का निषेध है ।	३- ब्रह्म सीमाओं से परे रहने पर भी अवतार लेता है और भक्तवत्सल है ।
४-. माया मिथ्या है ।	४- माया सत्य और मिथ्या दोनों ही है ।

१- सूर सागर- दशम स्कन्ध, पद ६३।६८१, पृ०२८२-२८३

पूर्व पक्ष	उत्तर पक्ष
५- भक्ति मानसिक है ।	५- भक्ति नवधा रूप है ।
६- कर्मकाण्ड का निषेध है ।	६- आचार और कर्मकाण्ड की मान्यता है ।
७- योग का महत्त्व है ।	७- योग का विशेष महत्त्व नहीं है ।

(ख) नाथ सम्प्रदाय की परम्परा तथा गोरख की भक्ति एवं उनका योग

सिद्ध सम्प्रदाय की प्रतिक्रिया स्वरूप ही 'नाथ-संप्रदाय' का उदय हुआ । बौद्ध धर्म -महायान,मंत्र-यान, वज्र यान तथा सहजयान में क्रमश: विकसित होता हुआ 'नाथ सम्प्रदाय' के रूप में पल्लवित हुआ । इस प्रकार बौद्ध धर्म के मौलिक विचारों में अपनी नींव का निर्माण कर नाथ सम्प्रदाय ने अपने रूप का निर्धारण किया । सिद्धों,की विचार धारा और उनके रूपकों को लेकर ही नाथवर्ग ने उनमें नवीन विचारों का प्रतिष्ठा की और उनकी व्यंजना में अनेक तत्वों का सम्मिश्रण किया । इस शैली का अनुसरण करते हुए उन्होंने निरीश्वर-वादी 'शून्य' को ईश्वरवादी 'शून्य' बना दिया ।'[१]

सुंनि ज माई सुंनि ज बाप । सुंनि निरंजन आपै आप ।
सुंनि कै परचै भया सथीर । निहचल जोगी गहर गंभीर ।।[२]

वैदिक परम्परा (ऋग्वेद) से प्रभाव ग्रहण कर नाथ सम्प्रदाय में 'शिव' की उपासना मान्य हुई जिन्हें इस सम्प्रदाय का आदि प्रवर्तक 'आदिनाथ' कहा गया । आदिनाथ के शिष्य मच्छंदरनाथ या मत्स्येन्द्रनाथ हुए और उनके शिष्य गोरखनाथ या गोरक्ष नाथ[३]।'

१- डा० रामकुमार वर्मा- हि०सा० का आ० इतिहास,पृ०१०१
२- गोरखबानी (डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल),पृ०७३(हि०सा०स०प्रयाग,सं०१९९९)
३- नाथपंथी साहित्य(निबंध)--डा०हजारीप्रसाद द्विवेदी,हिन्दी साहित्य,भाग२

नाथपंथियों का एकमात्र लक्ष्य भवबन्धनों से मुक्त होकर शिवत्व की प्राप्ति करना है । उनकी दृष्टि में शिवत्व अथवा परमतत्व 'केवल' स्वरूप है । यह भाव- अभाव से परे अगम-अगोचर है । उसे न तो 'बस्ती' कह सकते हैं और न 'शून्य' ही । ब्रह्म का निवास ब्रह्म-रन्ध्र अथवा शून्य में ही माना गया है । वह नाम और रूप दोनों से परे है, अत: उसका क्या नाम रखा जा सकता है ।

बसती न सुन्यं सुन्यं न बसती अगम अगोचर ऐसा ।
गगन-सिखर महि बालक डोलै ताका नांव धरहुगे कैसा ।।[१]

इस पंथ की प्रमुख साधना हठयोग साधना है । इन्होंने अपनी साधना को व्यावहारिक बनाने में अधिक बल दिया । सैद्धांतिक दृष्टि से आत्मा-परमात्मा का चाहे जो सम्बन्ध कल्पित किया जाय,किन्तु व्यावहारिक दृष्टि से व्यक्ति की मुक्ति उन दोनों के संयोग पर ही निर्भर है । नाथपंथ उसी योगानुभूति तक पहुंचाने वाला पंथ है । नाथपंथियों के योग में 'काया-साधना' को विशेष महत्व दिया गया है। बहुत-सी यौगिक साधनाओं में शरीर को अनेक प्रकार से कष्ट देकर मुक्ति प्राप्ति का प्रयत्न किया जाता है, किन्तु नाथ पंथ में ऐसा नहीं है । इन्होंने काया को रोग,मृत्यु एवं जरा से बचाकर सतत् बाल स्वरूप,अमर एवं अविनाशी बनाने की बार-बार चर्चा की है ।

आरम्भ जोगी कथीला एक सार ।
षिण षिण जोगी करै शरीर विचार ।।

गुरु गोरखनाथ भी शरीर को अधिक कष्ट देकर योग साधना के पक्ष में नहीं हैं । उनका कथन है कि " भोजन पर टूट नहीं पड़ना चाहिए, न भूखे ही मरना चाहिए । रात-दिन ब्रह्माग्नि को ग्रहण करना चाहिए । शरीर के साथ हठ नहीं करना चाहिए और न पड़ा ही रहना चाहिए । हे अवधूत आहार तोड़ो, मिताहार करो, नींद को अपने पास न आने दो, छठें समासे काया कल्प

१-डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल द्वारा संपादित गोरखबानी,सबदी १।

किया करो । इससे तुम कभी रोगी नहीं होओगे । कोई-कोई बिरले योगी ही ऐसा कर सकते हैं[१]।

गुरु ने प्रत्येक व्यक्ति के शरीर रूपी क्यारी को जोता बोया है,अर्थात् प्रत्येक हृदय में बीज रूप में परमात्मा विद्यमान है । गोरख घट-घट में उपदेश कर रहे हैं, अनाहत नाद हो रहा है, किन्तु इससे वे ही लाभान्वित हो सकते हैं जो अपनी काया को सिद्ध कर चुके हैं । जिस प्रकार कच्ची हाड़ी में पानी नहीं ठहर सकता उसी प्रकार साधना शून्य काया वाले इससे लाभ नहीं उठा सकते ।

घटि घटि गोरख बाही क्यारी । जो निपजे सो होइ हमारी ।
घटि घटि गोरख कहै कहाणी । काचे भांडे रहै न पांणी ।।

गोरखनाथ ने कायागढ़ पर विजय प्राप्त करने का उपदेश दिया है ।

कायागढ़ भीतरि नौ लख खाई, जन्त्र फिरै गढ़ लिया न जाई ।

\+ \+ \+

आदिनाथ नाती मछिन्द्रनाथ पूता, कायागढ़ जीति ले गोरख अवधूता[१]।।

कायारूपी गढ़ के अन्तर्गत नौ लाख खाइयाँ हैं । (नवरन्ध्र) अथवा चौरासी लाख योनियों के संस्कार जिन्हें पाटकर,(विजय कर) दशम द्वार (ब्रह्मरन्ध्र) तक पहुंचा जाता है । जिस पर ताला लगा हुआ है । उसे कुण्डलिनी शक्ति के द्वारा खोलना आवश्यक है-- देव,देवालय और तीर्थ-त्रिकुटी,काशी इसी शरीर रूपी गढ़ के भीतर हैं, वहीं अविनाशी परमात्मा सहज स्वभाव से मुझे मिले हैं । गोरखनाथ कहते हैं कि हे मनुष्यों काया-गढ़ को कोई विरला ही जीत सकता है ।

१- गोरखबानी,पद ३६

अष्टांग योग

नाथ सम्प्रदाय के अष्टांग योग पर कौल-पंथ का प्रभाव है। कौल पंथ में अष्टांग योग की जो भावना है, वह साधना रूप में नाथ सम्प्रदाय में अवश्य चली आई है, किन्तु नाथ सम्प्रदाय ने अभिचारों में प्रवृत्ति का तीव्रतम विरोध किया है। इसका प्रमुख कारण यही है कि अभिचारों और क्रिया पक्ष में प्रवृत्त होने पर जीवन के सहज रूप में विकृति की सम्भावना होने लगती है और तब ऐसे पथ का अनुसरण करना हिंस्र व्याघ्र को गर्दन का आलिंगन करने, विषैले सर्प से क्रीडा करने अथवा नंगे कृपाण की तीक्ष्ण धार पर चलने के समान भयानक हो जाता है[1]। बज्रयान की साधना में भी अष्टांग योग की साधना रही है, संभवत: नाथ सम्प्रदाय ने वहीं से योग का तत्व ग्रहण किया है। इनके इस अष्टांग योग में रसायन का भी प्रभाव है। इस रसायन से योग की प्रारम्भिक अवस्थाओं में शरीर का 'कायाकल्प' कर लेना[2] नाथ संतों की साधना का आवश्यक अंश रहा है।

कुण्डलिनी जागरण

कुण्डलिनी जागरण में साधक तभी सफल हो सकता है जब सूक्ष्म नाड़ियों को 'षट-कर्मों' (धौति, बस्ति, नेति, त्राटक, नौलि, कपालभाति) के द्वारा शुद्ध करता है। कुण्डलिनी, वायु और उपस्थ के बीच मूलाधार के त्रिकोण या अग्नि चक्र में अवस्थित स्वयंभुलिंग को साढ़े-तीन बलयों में लपेटकर सर्पिणी की भाँति अधोमुख किए हुए स्थित है। वह सुप्तावस्था में है, इसे जागृत कर ब्रह्मद्वार में स्थित शिव से समरस कराना ही योगी का चरम लक्ष्य है। जिस प्रकार चाभी से ताला खुल जाता है, उसी प्रकार कुण्डलिनी के जागरण और सहस्रदल कमल से उसका स्पर्श होने पर मोक्ष द्वार खुल जाता है[3]। विविध उपायों से साधक इड़ा और

१-डा०रामकुमार वर्मा-- हि०सा० का आलो०इति०, पृ०१०२

२-बरसवै दिन काया पलटिबा, यूं कोई बिरला जोगी।-गोरखबानी, पृ०६५

३-उद्घाटयेत् कपाटं तु तथा कुंचिक्या हठात्।
कुण्डिलन्या ततो योगी मोक्षद्वारं प्रभेदयेत्॥ --गोरक्षशतक १।५१

पिंगला के मार्ग को चैतन्य कर सुषुम्णा की मध्यवर्तिनी ब्रह्म नाड़ी से कुण्डलिनी को ऊर्ध्वमुख करता है और वह आगे बढ़ती हुई मेरुदण्ड के समानान्तर सुषुम्ना नाड़ी पर स्थित षट्चक्रों का भेदन करती हुई सहस्रार-चक्र के ब्रह्मरन्ध्र का स्पर्श करती है। सहस्रदलों के कमल के आकार का सहस्रार-चक्र ही इस शरीर रूपी तीर्थ का कैलाश है, जहां पर शिव निवास करते हैं। इस महातीर्थ तक पहुंचाने की क्षमता केवल सुषुम्ना नाड़ी में ही है, इसीलिए इसे शाम्भवी-शक्ति कहा जाता है[1]। कुण्डलिनी शक्ति जब उलटकर ब्रह्माण्ड में पहुंच जाती है और नख से शिख तक सर्वांग में वायु व्याप्त हो जाती है अर्थात् वायु-मंथन होने लगता है तब सहस्रार स्थित अमृत प्रस्रावक चन्द्रमा ही राहु(मूलाधार पद्म स्थित सूर्य) को ग्रस लेता है जिससे अमृत का पान सम्भव होता है[2]। नाथ गुरु ने कहा है कि --

> इलो, सौधि धरि प्यांगुली पूरी, सुषमनी चढ़ असमानं।
> मछिन्द्र प्रसादैं जती गोरष बोल्या, निरंजन सिधि नै थानं।।
>
> -- पद ५।१६

<u>प्रणव साधन और अजपाजाप</u>

प्रणव या ओंकार ही एकमात्र उपाधिरहित शब्द-तत्त्व के रूप में वर्णित होता है। उसी के भेद और रूप-नाद, ध्वनियों और शब्दों के रूप में गृहीत होते हैं। नाथों की रचनाओं में सूक्ष्म वेद प्रणव को ही साध्य माना गया है। गोरख इस ओंकार या प्रणव को ही मूल मानते हैं(अर्थात् वायु मंत्र साधन का मूल ओंकार है)। बिना इसका उपलब्धि के गोरख सिद्धि की उपलब्धि सम्भव नहीं मानते। नाथ लोग केवल सूक्ष्मवेद प्रणव को स्वीकार करते हैं तथा यह तत्त्व, परमतत्त्व की भांति सम्पूर्ण सृष्टि में व्याप्त है।

अजपाजाप का श्वास-प्रश्वास ही आधार है। इस जाप में माला और जिह्वा की आवश्यकता नहीं होती। श्वासोच्छ्वास की क्रिया पर रोम रोम से मन्त्रावृत्ति की जा सकती है। नाथ गुरु ने कहा है कि जिह्वा की टकसाल बनाकर वहां अमेय परमतत्त्व रूप हीरे को सुशब्द अर्थात् अजपा मन्त्र के

१- नाथ सम्प्रदाय, पृ०१२७
२- गोरखबानी--सबदी ६३-२१७

द्वारा बेधो--'सुबबदे हीरा बेधिले अवधू जिभ्या करि टकसाल[१]।'

रात दिन ब्रह्म ज्ञान के स्मरण से सुषुम्ना में सूर्योदय हो जाता है। रोम-रोम में तुरी बजने लगती है तथा ब्रह्मरन्ध्र में ज्योति प्रकाशित हो जाती है[२]।

खेचरी मुद्रा

योगियों का कहना है कि खेचरी मुद्रा अति साधित है। इसमें योगी की ऊर्ध्वगा जिह्वा सहस्रार चक्रस्थित चन्द्र प्रवित अमृत का पान करती है। इसी अमृत-पान की क्रिया को विपर्यय में 'अमर वारुणी' का पीना कहा गया है तथा जिह्वा को उलटकर तालु देश में ले जाना ही 'गोमांस-भक्षण' है[३]।

शब्द-तत्व

शास्त्र में जिसे प्रणव या ओंकार कहते हैं वही उपाधि रहित शब्द तत्व है[४]। गोरखनाथ ने तीर्थ आदि को व्यर्थ बतलाते हुए शब्द-तत्व को प्राप्त करने का उपदेश दिया है। शब्द की प्राप्ति से आत्मा में परमात्मा, जल में प्रतिबिम्बित चन्द्रमा की भांति दिखलाई पड़ने लगता है।

शब्द-तत्व की महिमा बतलाते हुए 'ज्ञान-तिलक' में कहा गया है कि शब्द ही ताला है, जो ब्रह्म को बन्द किए हुए है और शब्द ही वह कुंजी है, जिससे वह ताला खोला जाता है और परमात्मा के साक्षात् दर्शन होते हैं। जैसे कांटे से कांटा निकाला जाता है और कुंजी से ताला खोला जाता है वैसे ही शब्द से शब्द भी खोला जाता है। इस प्रकार शब्द के द्वारा अन्तर में प्रकाश होता है[५]।

१- गोरखबानी - सबदी ६०

२- ,, पद ३०

३- हठ योग प्रदीपिका ३।४६।८

४- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी- हिन्दी साहित्य की भूमिका, पृ०६४

५- गोरखबानी, पृ०२०७

मनोन्मनी अवस्था

सन्तों ने इसे 'उन्मुनिरहनी' कहा है। साधक,मन के सुस्थिर होने पर ही इस दशा को प्राप्त होता है। इस स्थिति में पहुंचने पर मन और प्राण का पूर्ण सम्मिलन हो जाता है। मन और प्राण की लय लगने पर एक अमृतपूर्ण आनन्द की उपलब्धि होता है[1]। मत्स्येन्द्रनाथ ने कहा है कि --

अवधू मन योगी जे उनमनि रहै। उपजै महारस सब सुष लहै।
रस ही मांहि अखण्डित पीर। सतगुर सबद बंधावै धीर ॥[2]

गोरखनाथ का यह उपदेश है कि 'तुम अपने आत्मा की रक्षा करो। हठपूर्वक खण्डन मण्डन में न पड़ो। यह संसार कांटे के खेत की तरह है जिसमें पग-पग पर कांटे चुभने का डर रहता है इसलिए देख देखकर पग रखना चाहिए[3]।'

इसके अतिरिक्त नाथ पंथियों की योग साधना में 'करनी' और 'रहनी' को विशेष महत्व दिया गया है। हठयोग एवं षट्कर्म 'करनी' के अन्तर्गत आते हैं। 'रहनी' के अन्तर्गत भोग और त्याग में समत्व रखना पड़ता है। भोग्य पदार्थों के बीच में रहते हुए भी उनसे दूर रहना पड़ता है। इसके लिए सर्वप्रथम मन को वश में करना पड़ता है,क्योंकि मन की शक्ति अपरिमित है--

यहु मन सकती,यहु मन सीव। यहु मन पंचतत्व का जीव।
यहु मन लै जो उन्मन रहै। तो तीन लोक की बातें कहै[4] ॥

मन पर विजय प्राप्त कर ही साधक सच्चा योगी बन सकता है। गोरखनाथ ने योगी के लिए उपदेश दिया है कि --

नाथ कहै तुम सुनहु रे अवधू, दिढ करि राषहु चीया।
काम क्रोध अहंकार निवारो, तो सबै दिसंतर कीया ॥(सबदी२६)

१- हठयोग प्रदीपिका ,पृ ३।४६।८

२- मछीन्द्र गोरखबोध, पृ०२०१

३- गोरखबानी--सबदी,७२।७३

४- ,, -- ३०-३१

तथा--

गोरख कहै सुणहु रे अवधू, जग में ऐसे रहणा ।
आंषे देषिबा काने सुणिबा,मुष थे कछू न कहणां ।।--सबदी७२

तात्पर्य यह कि गोरखनाथ ने अपनी योग साधना में योग के लिए आवश्यक समस्त क्रियाओं को समाहित कर रखा है । उन्होंने छठें समासे काया को पलटना, पवन का उलटना, षट-चक्र भेद करना,सूर्य चन्द्र का अपने घर में रक्षण, आसन और आहार की दृढ़ता , नाद-बिन्दु और वायु का रक्षण, मन-पवन की अचंचलता,इड़ा-पिंगला की सुषुम्ना या त्रिवेणी में संधि, मनसा के व्यापार का बन्धन, पवन पुरुष की उत्पत्ति,अध्यात्म-लीनता,चन्द्र सूर्य-साधन, नादानुसंधान, विंदु-स्थैर्य या दृढ़ता, इड़ा-पिंगला का नाड़ी साधन, आसन, महारसपान,मनोमारण,कायादोषहरण,ब्रह्माग्निप्रज्वलन,अमृतपान आदि को अपने योग में अन्तर्भूत कर लिया है[1] ।

इस प्रकार नाथों की योग-साधना का दृढ़ कण्ठस्वर उत्तर भारत के धार्मिक वातावरण को शुद्ध और उदार बनाने में बड़ा सहायक सिद्ध हुआ[2] है और इसी ने वह भाव भूमि प्रस्तुत की जिसपर सन्त सम्प्रदाय का देश व्यापी प्रसार हुआ ।

१-गोरखबानी ९८-१००

२- डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी-- नाथ सम्प्रदाय,पृ०१८७

नाथ सम्प्रदाय में भक्ति-तत्व

जहां तक 'नाथ सम्प्रदाय' की भक्ति का सम्बन्ध है-- इस विषय में प्राय: विद्वान् एकमत होकर भक्ति के अभाव की ही सूचना देते हैं। डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी कहा है कि गोरखनाथ की साधना में भक्ति को कोई स्थान प्राप्त नहीं था[1]। किन्तु यदि वास्तविक दृष्टिकोण से देखा जाय तो नाथ पंथी साधकों में भी भक्ति-तत्व वर्तमान था। वे उसके प्रभाव से वंचित नहीं रह सके हैं, हां इतना अवश्य हो सकता है कि भक्ति का स्थान योग की अपेक्षाकृत भले ही ऊंचा न रहा हो, फिर भी महत्व तो था ही। नाथ पंथियों का विद्रोह भक्ति से नहीं था, वे जाति-पांति मूलक भेद-भाव तथा नाना प्रकार के प्रपंचों और पाखण्डों से चिढ़ते थे।

गोरखनाथ ने भक्ति को निम्नरूप में स्वीकार किया है--

मणत गोरषनाथ मछीन्द्रना दासा।
भाव भगति और आस न पासा।[2]

उन्होंने तीर्थों के स्थान पर काया को ही नगरी के रूप में स्वीकार किया है जिसमें प्रतीकों के माध्यम से सत्य, संतोष, क्षमा और भक्ति को महत्वपूर्ण स्थान दिया है --

'तहां सत्य बीबी संतोष साहिजादा, षिमा भगति है दाई।[3]
आदिनाथ नाती मछीन्द्रनाथ पूता, काया नगरी गोरष बसाई।।

इनकी भक्ति में भी 'अनुराग' की झलक है। इन्होंने भी निर्गुण नारी से प्रेम किया है[4]। इन्होंने 'राम' को ब्रह्मरूप में स्वीकार किया,

---

१-गोरखनाथ अपने युग के सबसे महान धर्म नेता थे। उनकी संगठन शक्ति अपूर्व थी। उन्होंने किसी से भी समझौता नहीं किया, लोक से भी नहीं, वेद से भी नहीं, परन्तु फिर भी उन्होंने प्रचलित समस्त साधना मार्गों से उचित भाव ग्रहण किए। केवल एक वस्तु वे कहीं से न ले सके वह है हरिभक्ति। --नाथ सम्प्रदाय, पृ० १८८

२-गोरखबानी, पृ० १३०

३- " पृ० १२१

४- निर्गुण नारी सौं नेह करंता झम्कै रैण विहाणी जी। गोरखबानी, पृ० १५३

वे कहते हैं:

> तुझ पर वारी हो अणघड़ीया देवा ।
> तू अविनासी आदू कहिये मोंहि मरोसा पड़िया ।
> सब संसार घड़्या है तेरा, तू किनहूं नहिं घड़िया ।
> दस औतार बोतिरिया तिरिया वै पणि राम न होई ।
> करम कमाई उनहूं पाई, करता और कोई ।।[1]

संसार में एकमात्र शिव ही पुरुष है तथा अन्य सभी व्यक्ति नारी हैं--

> 'एक पुरिष बहु भांति नारी । सबै निरंतर आत्मा सारी ।
> सरब निरंतर भरपूरि रह्यिा....[2] ।'

'नाथ सिद्धों की बानियां'[3] इस बात को प्रमाणित करती हैं कि नाथ सिद्धों ने भक्ति की महत्ता और आवश्यकता की ओर संकेत किए हैं । ध्रुव ने तो स्पष्ट रूप से भक्ति की ही महत्ता स्वीकार की है --

> 'इहै भगति भगवन्त बसि, पुरिष भये सब पार[4] ।'

तथा--

> सबै प्रिथी कांटे भरी, अंतरि व्यापै सूल ।
> प्रिथीनाथ हरि भगति बिन, ते नर वृष बंबूल[5] ।।

तात्पर्य यह कि नाथ पंथ में योग-साधना का महत्व अधिक बढ़ा हुआ था । साधकों की दृष्टि का संकेत तो किया गया है किन्तु उसका स्थान योग की अपेक्षा गौण ही समझा गया ।

१- गोरखबानी, पृ० १३४
२- ,, पृ० १७८
३- नाथ सिद्धों की बानियां--संपादक-डा०पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा०हजारीप्रसाद-द्विवेदी ।
४- नाथ सिद्धों की बानियां, पृ० ७६
५- ,, पृ०७७

(ग) जनता की प्रवृत्ति

मध्य युग में मुस्लिम आतंक से जनता त्रसित हो चुकी थी। कट्टर मुस्लिम शासक धर्मान्धता में पड़कर मंदिर गिरा रहे थे, मूर्तियां तोड़ रहे थे। तात्पर्य यह कि हिन्दुओं का स्वतन्त्रतापूर्वक उपासना का द्वार लगभग बन्द हो चुका था। ऐसी परिस्थिति में कबीर ने निर्गुण, निराकार ब्रह्म की उपासना पर बल दिया, जिसके लिए मन्दिर और मूर्तियों की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती। कुचली हुई जनता उस समय की परिस्थितियों में बंधकर कबीर के इस निर्गुण उपासना को स्वीकार करने लगी, किन्तु कालान्तर में जब कबीर ने धार्मिक मान्यताओं को कोरे पाखण्ड के रूप में स्वीकार कर, धार्मिक ग्रन्थों-- वेद, पुराण की निन्दा प्रारम्भ की तो अधिकांश जनता, शिक्षित वर्ग पंडित आदि उनसे सहमत नहीं हो सके।

कबीरदास ने कहा है --

'पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुवा, पंडित भया न कोइ[1]।' आदि

तथा--

'कबीर संसा दूर करि, पुस्तक देइ बहाइ।'

क्योंकि --

'पंडित जन माते पढ़ि पुरान, जोगी माते धरि धियान।
सन्यासी माते ब्रह्मेव, तपा सु माते तप के भेव।
सब मद माते कोऊ न जाग, संग ही चोर घर मुसन लाग।।'[2]

कबीर साहब ने हिन्दू धर्म सम्बन्धी पौराणिक सिद्धान्तों के आधार स्वरूप ग्रन्थ वेद चतुष्टय तथा स्मृति आदि की भी चर्चा की है और उन्हें भ्रमात्मक ठहराया है[3]। उनका कथन है कि चारों वेदों के मतों का निर्णय करते-करते

१- कबीर ग्रन्थावली (का०ना०प्र०सभा, पृ०३६)

२- 'गुरु ग्रन्थ साहिब', रागु बसंतु पद २, पृ०११६३

३- परशुराम चतुर्वेदी -- कबीर साहित्य की परख, प्रथम संस्करण-भारती भंडार, प्रयाग पृ०४६

संसार घोखे में पड़ जाता है और श्रुति-स्मृति पर की गई आस्था उन्हें बन्धन में डाल देती है[1]। स्मृति तो वेद की पुत्री ही है और वह सभी को बांधने के लिए सांकल एवं रस्सी लिए पहुंच जाती है[2]। ये धर्म ग्रन्थ सच्चे मार्ग प्रदर्शक नहीं कहे जा सकते। इसी प्रकार उन्होंने धर्मशास्त्रों के आधार पर प्रस्तुत की गई वर्ण-व्यवस्था को भी अमान्य ठहराया है तथा शास्त्र विहित नियमों की भी आलोचना की है, जिनके अनुसार अस्पृश्यता तथा अपवित्रता के भाव जागृत होते हैं। उनका कथन है कि यदि जल में छूत है, स्थल में छूत है, जन्म में छूत है, मरण में छूत है तो फिर पवित्रता कहां रह जाती है ?

इसी प्रकार कबीर ने उपवासव्रत करने को पाखण्ड बतलाया है[3]। माला फेरने, जप करने को व्यर्थ बतलाकर मन को वश में करने का आदेश दिया है[4]। हिन्दू लोगों के मृतकों की दाह-क्रिया तथा श्राद्ध कर्म को निरर्थक एवं ढोंग मात्र बतलाया है[5]।

इस प्रकार कबीर की इस खण्डन की प्रवृत्ति से ऊबकर वैष्णव धर्म के प्रति आस्था रखने वाली अधिकांश जनता असन्तुष्ट हो गई। वेदों, शास्त्रों तथा पुराणों को निन्दनीय बतलाने के कारण शिक्षित वर्ग पंडित वर्ग पहले ही इनके विरुद्ध हो चुका था -- अब इनके साथ जन सामान्य साधारण वर्ग ही रह गया जो इनका समर्थन करता था।

इनके वेद-पुराणों की निन्दा करने से क्षुब्ध होकर गोस्वामी तुलसीदास ने भी एक स्थान पर कहा है --

> साखी सबदी दोहरा, कहि किहनी उपखान।
> भगति निरूपहिं अधम कवि, निंदहि वेद पुरान ॥[6]

१- कबीर ग्रन्थावली, पद ० ४७, पृ०१०३
२- 'गुरु ग्रन्थ साहब' -- रागु गउड़ी, पद३०, पृ०३२६
३- ,, -- रागु गोंड, पद ११
४- कबीर ग्रन्थावली -- सा०१-१०, पृ०४५-४६
५- ,, -- पद ३५६, पृ०२०७
६- तुलसी ग्रन्थावली -- (का०ना०प्र०सभा, तृ० संस्करण, पृ०१५१

तात्पर्य यह कि तुलसीदास ने कबीर के वेद-पुराणों की निन्दात्मक प्रवृत्ति की आलोचना की है। उन्होंने श्रुति सम्मत पथ की ओर चलने का संदेश जनता को दिया। और अधिक सहज और भाव-सम्मत होने के कारण जनता तुलसीदास द्वारा बतलाये भक्ति के मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित हो गई।

-०-